बाबूलाल पराते

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य

(बी. पी. सिन्हा, सी.जे., एस.के.दास, ए.के.सरकार, एन. राजगोपाल अयंगर एवं जे.आर. मुधोलकर, न्यायाधिपति.)

आपराधिक प्रक्रिया-खतरे की आशंका- मजिस्ट्रेट की तुरंत आदेश जारी करने की शक्ति-संवैधानिकता-दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का पांचवा), धारा-144- भारत का संविधान, अनुच्छेद 19 (1)(ए) एवं (बी).

जिला मजिस्ट्रेट ने दो प्रतिद्वंद्वी श्रमिक संघों द्वारा किए गए प्रदर्शनों और प्रति- प्रदर्शनों के परिणामस्वरूप शांति भंग होने की आशंका जताते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत आदेश जारी किया। जिसे पंद्रह दिनों की अवधि के लिए लागू रहना था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, कुछ निर्दिष्ट क्षेत्रों में पांच या अधिक व्यक्तियों के इकट्ठा होने पर रोक लगाइ गइ थी। याचिकाकर्ता ने इसे संविधान की धारा 19(1)(ए) एवं (बी) के तहत नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर आक्रमण के रूप में लिया और निर्दिष्ट क्षेत्रों के बाहर बैठक कर कार्यकर्ताओं से उक्त आदेश की

अवहेलना करते हुए अधिसूचित क्षेत्रों में जुलूस निकालने का आह्वान किया। इसके बाद उस पर भारतीय दंड संहिता की धारा 143 और 188 सपठित धारा 117 के तहत मुकदमा चला। इसके विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 में उच्च न्यायालय का रुख किया और वहां राहत पाने में असफल होने पर इस न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत धारा 144 दंड प्रक्रिया संहिता की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी कि यह जिलामजिस्ट्रेट को व्यापक और अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करती है और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) व (बी) का उल्लंघन करती है।

अभिनिर्धारित किया गयाः धारा 144 दंड प्रक्रिया संहिता की संवैधानिक वैधता की चुनौती विफल होनी चाहिए।

समग्र रूप से पढ़ने पर धारा से स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि इसका उद्देश्य विकारों, बाधाओं और परेशानियों को रोककर सार्वजनिक लाभ को सुरक्षित करना था। इसके द्वारा प्रदत्त शक्तियां जिम्मेदार मजिस्ट्रेटों द्वारा प्रयोग योग्य थीं जिन्हें न्यायिक रूप से कार्य करना था और इसके द्वारा अनुमत प्रतिबंध अस्थायी प्रकृति के थे और केवल आपातकालीन स्थिति में ही लगाए जा सकते थे।

धारा जिन प्रतिबंधों को अधिकृत करती है, वे संविधान के अनुच्छेद 19 के भाग (2) और (3) द्वारा निर्धारित सीमाओं से परे नहीं हैं। इस धारा द्वारा प्रावधानित गतिविधियों पर रोक निस्संदेह सार्वजनिक हित में है और

इसलिए यह सार्वजनिक व्यवस्था के हित में भी है।

संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) में उल्लिखित प्रतिबंधों को लागू करने के लिए किसी विशेष अधिनियम की आवश्यकता नहीं है।

आक्षेपित धारा को समग्र रूप से समझा जाना चाहिए और यद्यपि खण्ड (i) का स्पष्ट रूप से यह उल्लेख नहीं करता है कि मजिस्ट्रेट के आदेश से पहले एक जांच करनी चाहिए, परन्तु दूसरा भाग स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि मजिस्ट्रेट को या तो अपनी जांच से या उसे दी गई रिपोर्ट से खुद को संतुष्ट करना होगा कि तथ्य क्या हैं। इसलिए, यह धारा आदेश देने के मामले में मजिस्ट्रेट को मनमानी शक्ति प्रदान नहीं करती है।

धारा के तहत व्यापक शक्ति का प्रयोग केवल आपात स्थिति में और उसमें निर्दिष्ट बाधा, परेशानी अथवा क्षति को रोकने के उद्देश्य से ही किया जा सकता है और वे कारक आवश्यक रूप से शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करते हैं और इसलिए, यह कहना सही नहीं होगा कि शक्ति असीमित या अनियंत्रित है। चूँकि फैसला मजिस्ट्रेट का होना है, इसलिए यह माना जा सकता है कि शक्ति का प्रयोग वैध और ईमानदारी से किया जाएगा। इस धारा को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि मजिस्ट्रेट संभवतः अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है।

हालाँकि यह धारा मजिस्ट्रेट को आपातकाल का प्रारंभिक निर्णायक बनाती है परन्तु यह उसके द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को अनुचित नहीं बना

सकती है। चूँकि कानून और व्यवस्था का बनाए रखना कार्यपालिका की जिम्मेदारी है, इसलिए यह उचित है कि प्रारंभिक निर्णय मजिस्ट्रेट का होना चाहिए। लेकिन ऐसा निर्णय पूरी तरह से उसकी व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित नहीं है। उप-धारा (2), (4) और (5) स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि मजिस्ट्रेट को न्यायिक रूप से कार्य करेगा। इसके अलावा, उसके आदेश के औचित्य को पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है। इसलिए, यह कहना सही नहीं होगा कि धारा के तहत किसी आदेश से पीड़ित व्यक्ति का उपचार भ्रामक था।

पी. टी. चंद्रा, संपादक, ट्रिब्यून बनाम एम्परर, ए.आई.आर. 1942 लाह. 171, संदर्भित.

अमेरिकी सिद्धांत कि मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर पिछले प्रतिबंध केवल तभी स्वीकार्य हैं जब कोई स्पष्ट और वर्तमान खतरा हो, भारत में लागू नहीं हो सकता है,

संविधान के अनुच्छेद 19(1) द्वारा प्रदत्त अधिकार असीमित नहीं हैं, अपितु खण्ड (2) से (6) के तहत प्रतिबंधों के अधीन हैं। अतः धारा 144 द्वारा अनुमत अग्रिम कृत्य अनुच्छेद 19 के भाग (2) व (3) से बाधित नहीं हैं।

शेनेक बनाम यू.एस. 249 यू.एस. 47, पर विचार किया गया।

मद्रास राज्य बनाम वी.जी. रो [1952] एस.सी.आर. 597, पर निर्भर

किया।

मूल क्षेत्राधिकार: याचिका संख्या 90/1956 भारत के संविधान के अनुच्छेद उसके अंतर्गत मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए याचिका

आर. वी. एस. मणि, याचिकाकर्ता की ओर से

एन.एस. बिंद्रा, के.एल. हाथी एवं आर.एच.ढेबर, उत्तरदाताओं की ओर से

12 जनवरी, 1961 को निर्णय, मुधोलकर, न्यायाधिपति द्वारा पारित किया गया। यह याचिका धारा 144 के प्रावधानों को लागू नहीं करने के लिए उत्तरदाताओं को एक उचित रिट जारी करने के लिए या एक उपयुक्त रिट जो प्रतिवादी संख्या 4 को भारतीय दंड संहिता की धारा 143 और 188 सपठित धारा 177 के तहत अपराधों के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने से आगे बढ़ने से रोकती है। प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही को रद्द करने के लिए और याचिकाकर्ता को पेश करने या पेश करने का निर्देश देने के लिए उत्तरदाता संख्या 1 से 3 को बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने के लिए उसके साथ विधि अनुसार व्यवहार किए जाने एवं उसे आज़ाद करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत प्रस्तुत की गइ है।

जिन तथ्यों के आधार पर याचिका दायर की गई है वे संक्षेप में इस प्रकार हैं:

नागपुर में कपड़ा श्रमिकों की दो यूनियनें हैं, एक को राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ और दूसरे को नागपुर मिल मजदूर संघ के नाम से जाना जाता है। पहली भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की एक शाखा है। राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ ने एम्प्रेस मिल नंबर 1 को बंद कर इसका पुनर्निर्माण करने और उसमें कार्यरत श्रमिकों के तीसरी पाली में रोजगार देने के संबंध में एम्प्रेस मिल्स प्रबंधन के साथ एक समझौता किया। इस समझौते का नागपुर मिल मजदूर संघ ने विरोध किया था। 25 जनवरी, 1956 को, नागपुर मिल मजदूर संघ से जुड़े श्रमिकों का एक समूह एक जुलूस में गुजर के वाडा, महल, नागपुर गया, जहाँ राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ का कार्यालय स्थित है।

बताया जाता है कि वहां जुलूस में शामिल कुछ लोगों और राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ में शामिल कुछ कार्यकर्ताओं के बीच झड़प हो गयी। इसके बाद 27 जनवरी, 1956 को पुलिस द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 452 सपठित धारा 147 के अंतर्गत अपराध दर्ज किया गया। नागपुर मिल मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं द्वारा एक बड़ा जुलूस निकाला गया। यह जुलूस नागपुर शहर में नारे लगाते हुए गुजरा, जो जिला मजिस्ट्रेट के अनुसार, उत्तेजक थे। उसी रात कस्तूरचंद पार्क में एक बैठक आयोजित की

गई जिसमें यह आरोप लगाया गया कि नागपुर मिल मजदूर संघ से जुड़े श्रमिकों को बैठक को संबोधित करने वाले वक्ताओं ने एम्प्रेस मिल नंबर 1 के सामने सत्याग्रह करने और राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ के कार्यालय तक जुलूस निकालने के लिए उकसाया था। 28 जनवरी, 1956 को नागपुर मिल मजदूर संघ से जुड़े कार्यकर्ता बड़ी संख्या में महल चौक और महल रोड पर एकत्र हुए और सड़क पर यातायात अवरुद्ध कर दिया। बताया जाता है कि ये लोग सड़क पर बैठ गए थे और जब उन्होंने हिलने से इंकार कर दिया तो जिला मजिस्ट्रेट ने 29 जनवरी, 1956 को सुबह 4 बजे एक आदेश पारित किया, जो तुरंत लागू हुआ और जिसमें पंद्रह दिनों की अवधि के लिए अन्य बातों के अलावा आदेश में निर्दिष्ट कुछ क्षेत्रों में पांच या अधिक व्यक्तियों की सभा पर प्रतिबंध लगाया गया।

याचिकाकर्ता ने यह माना कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत पारित आदेश नागरिकों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और शांतिपूर्वक और हथियारों के बिना इकट्ठा होने के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण था, जो संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) और (बी) के तहत प्रदत्त है और, इसलिए, उसने उपरोक्त आदेश के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र के बाहर एक सार्वजनिक बैठक की।

यह आरोप है कि उस बैठक में उसने जिला मजिस्ट्रेट की आलोचना की और कार्यकर्ताओं को उनके आदेश का उल्लंघन करने और आदेश के

अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में जुलूस निकालने के लिए उकसाया था। इसके बाद नागपुर पुलिस ने उसे ऊपर उल्लेखित अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया और मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया।मजिस्ट्रेट ने उसे 15 फरवरी 1956 तक न्यायिक अभिरक्षा में प्रेषित कर दिया। याचिकाकर्ता की जमानत अर्जी इस आधार पर खारिज कर दी गई कि उसके खिलाफ आरोप गैर-जमानती अपराध से संबंधित है। इसके बाद याचिकाकर्ता ने जमानत पर रिहाई के लिए नागपुर उच्च न्यायालय का रुख किया, लेकिन 22 फरवरी, 1956 को उसका आवेदन खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने तब बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका प्रस्तुत की। उस याचिका को 9 मई, 1956 को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। याचिकाकर्ता ने तब संविधान के अनुच्छेद 132 के तहत प्रमाण पत्र देने के लिए उच्च न्यायालय का रुख किया। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर प्रमाण पत्र देने से इनकार कर दिया, क्योंकि उसकी राय में इस मामले में संविधान की व्याख्या के संबंध में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं था और यह अन्यथा प्रमाण पत्र देने के लिए भी उपयुक्त नहीं था। 23 अप्रैल, 1956 को याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान याचिका प्रस्तुत की। याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में याचिका पर निर्णय होने तक प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए

एक पक्षीय आदेश की भी मांग की। इस न्यायालय ने याचिका स्वीकार कर ली लेकिन स्थगन आवेदन खारिज कर दिया। 6 मई, 1956 को, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए प्रस्ताव का नोटिस दिया। 28 मई, 1956 को, इस न्यायालय ने आदेश दिया कि पूरी अभियोजन साक्ष्य को दर्ज किया जाए, लेकिन इस याचिका पर निर्णय लंबित रहने तक फैसला पारित करने पर रोक लगा दी।

इस न्यायालय द्वारा कार्यवाही पर रोक लगाने के बाद, याचिकाकर्ता को विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया।

याचिकाकर्ता की ओर से श्री मणि ने निम्न तर्क उठाए हैंः

(1) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144, जहां तक यह भाषण की स्वतंत्रता और सभा की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने से संबंधित है, जिला मजिस्ट्रेट और कुछ अन्य मजिस्ट्रेटों को बहुत व्यापक शक्तियां प्रदान करती है और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) और (बी) प्रदत्त अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है।

(2) जिला मजिस्ट्रेट संपूर्ण कानूनी मशीनरी का गठन करता है और नियंत्रण के लिए एकमात्र जांच करता है उनकी शक्तियों को नियंत्रित करने का एकमात्र रास्ता आदेश को संशोधित करने या रद्द करने के लिए एक याचिका प्रस्तुत करना है, इस प्रकार जिला मजिस्ट्रेट "अपने स्वयं के मामले में एक न्यायाधीश" बन जाता है- संभवतः, विद्वान वकील का

मतलब अपने स्वयं के निर्णय के संबंध में एक न्यायाधीश होने से है- और इसलिए प्रावधान द्वारा प्रदान किया गया उपाय भ्रामक है। इसके अलावा जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से प्रदत्त उपाय भी भ्रामक है और इस प्रकार वास्तव में उचित अर्थ में उसके आदेश की कोई न्यायिक समीक्षा नहीं हो सकती है।

(3) धारा 144 आपराधिकता का निर्धारण करने के लिए परीक्षण के रूप में "संभावना" या "प्रवृत्ति" को देखती है; आपराधिकता को पहले से निर्धारित करने का परीक्षण अनुचित है।

(4) धारा 144 सार्वजनिक प्राधिकारियों के कानून व्यवस्था बनाए रखने के कर्तव्य कर्तव्य के लिए विधिक गतिविधि का दमन प्रदान करती है।

(5) यह मानते हुए भी कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 संविधान के विपरीत नहीं है, इस मामले में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश ऐसे प्रतिबंध लगाता है जो संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) और (3) के दायरे से बहुत आगे जाते हैं और इस प्रकार वह आदेश असंवैधानिक है।

विद्वान अधिवक्ता ने संवैधानिक के अलावा अन्य आधारों पर भी आदेश की वैधता को चुनौती दी, लेकिन हमें यहां उन पर विचार करने की

आवश्यकता नहीं है। याचिकाकर्ता उन्हें विचारण के दौरान उठाने के लिए स्वतंत्र है। यह संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत प्रस्तुत याचिका है। अतः याचिकाकर्ता को खुद को उन आधारों तक सीमित रखना चाहिए जो उसके खण्ड (1) अंतर्गत आते हैं।

हमारा मानना है कि संपूर्ण धारा 144 को यहाँ पुनः प्रस्तुत करना वांछनीय है।

"(1) उन मामलों में, जिनमें जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त किए गए अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट की राय में इस धारा के तहत कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और तुरंत निवारण या त्वरित उपचार वांछनीय है,

वह मजिस्ट्रेट ऐसे लिखित आदेश द्वारा जिसमें मामले के तथ्यों का कथन होगा और जिसकी तामील धारा 134 द्वारा प्रदान किए गए तरीके से कराई जाएगी, किसी व्यक्ति कार्य विशेष न करने या अपने कब्जे की या अपने प्रबंधाधीन किसी विशिष्ट संपत्ति की कोई विशिष्ठ व्यवस्था करने का निदेश उस दशा में दे सकता है जिसमें ऐसा मजिस्ट्रेट समझता है कि ऐसे निदेश से यह संभाव्य है या ऐसे निदेश की यह प्रवृत्ति है कि विधिपूर्वक नियोजित किसी व्यक्ति को बाधा, क्षोम या क्षति का, या मानव जीवन स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे का, या लोक प्रशांति विक्षुब्ध होने का, या बल्वे या दंगे का निवारण हो जाएगा।

(2) इस धारा के अधीन आदेश, आपात की स्थिति या ऐसे मामलों में जहां परिस्थितियां ऐसी हैं कि उस व्यक्ति पर, जिसके विरुद्ध वह आदेश निदिष्ट है, सूचना की तामील सम्यक समय में करने की गुजाइंश न हो, एकपक्षीय रुप से पारित किया जा सकता है।

(3) इस धारा के तहत आदेश किसी विशेष व्यक्ति या किसी विशेष स्थान या क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्ति या आम जनता को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(4) कोई भी मजिस्ट्रेट, अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या किसी पीड़ित व्यक्ति के आवेदन पर, स्वयं या उसके अधीनस्थ किसी मजिस्ट्रेट, या कार्यालय में अपने पूर्ववर्ती द्वारा इस धारा के तहत दिए गए किसी भी आदेश को रद्द या बदल सकता है।

(5) जहां ऐसा कोई आवेदन प्राप्त होता है, मजिस्ट्रेट आवेदक को व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा उसके सामने उपस्थित होने और आदेश के खिलाफ कारण बताने का शीघ्र अवसर देगा; और यदि मजिस्ट्रेट आवेदन को पूरी तरह या आंशिक रूप से खारिज कर देता है, तो वह ऐसा करने के अपने कारणों को लिखित रूप में उल्लेखित करेगा।

(6) इस धारा के तहत कोई भी आदेश इसके पारित करने से दो महीने से अधिक समय तक लागू नहीं रहेगा; जब तक कि मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए खतरे या दंगे या झगड़े की संभावना के मामलों

में, राज्य सरकार आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्देश न दे।"

उपधारा (1) कार्यपालिका को नहीं बल्कि कुछ मजिस्ट्रेटों को शक्तियाँ प्रदान करती है। इस प्रावधान को कुछ राज्यों में संशोधित किया गया है, उदाहरण के लिए, पूर्व बॉम्बे राज्य जहां पुलिस आयुक्त को इसके तहत आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान की गई है। लेकिन हमारा यहां उस मामले से कोई सरोकार नहीं है, क्योंकि वह प्रावधान जैसा कि पूर्व मध्यप्रदेश राज्य पर लागू होता है, जो हमारे चिंतन का विषय है। उपधारा (1) के तहत मजिस्ट्रेट को स्वयं यह राय बनानी होगी कि इस धारा के तहत कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और तत्काल रोकथाम या शीघ्र उपचार वांछनीय है। पुनः उप. धारा के अनुसार मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षा की जाती है कि वह लिखित में आदेश दे और उसमें उन भौतिक तथ्यों का उल्लेख करे जिनके कारण वह उसके अधीन आदेश दे रहा है। उप-धारा आगे उन विशेष गतिविधियों का उल्लेख करती है जिनके संबंध में मजिस्ट्रेट प्रतिबंध लगाने का हकदार है।

उप-धारा (2) के तहत मजिस्ट्रेट को आम तौर पर उस व्यक्ति को नोटिस देने की आवश्यकता होती है जिसके खिलाफ आदेश दिया गया है और उसे केवल तब एकपक्षीय कार्रवाई करने का अधिकार देती है, जहां परिस्थितिवश नियत समय में ऐसे नोटिस की तामील करना संभव ना

हो, तब।

उपधारा (3) में किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

उप-धारा (4) एक मजिस्ट्रेट को इस धारा के तहत दिए गए आदेश को रद्द करने या बदलने में सक्षम बनाती है और इस प्रकार यदि आदेश किसी निर्दिष्ट व्यक्ति को संबोधित है, या यदि आदेश जनता के किसी सदस्य को संबोधित है या आम तौर पर जनता को संबोधित है तो प्रभावित व्यक्ति को सक्षम बनाती है कि एक आवेदन देकर, आदेश के अनुपालन से छूट मांग सकता है या आदेश में संशोधन की मांग कर सकता है और इस प्रकार उसे अपनी शिकायतों के बारे में मजिस्ट्रेट को संतुष्ट करने का अवसर मिलता है। मजिस्ट्रेट को इस प्रकार के आवेदनों को न्यायिक रूप से निपटाना पड़ता है क्योंकि उसे उप-धारा 5 के अनुसार उसे दिए गए आवेदन को पूर्णतया या आंशिक रूप से अस्वीकार करने के अपने कारण उल्लेखित करना होता है।

अंततः ऑर्डर की सामान्य अधिकतम अवधि उसे पारित करने की तारीख से दो महीने है। इस प्रकार आदेश द्वारा लगाए गए प्रतिबंध अस्थायी प्रकृति के हैं।

संपूर्ण धारा को देखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि, मोटे तौर पर, इसका उपयोग विकारों, बाधाओं और परेशानियों को रोकने के लिए किया जाना है और इसका उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण को सुरक्षित करना है।

शक्तियों का प्रयोग जिम्मेदार मजिस्ट्रेटों द्वारा किया जाना है और इन मजिस्ट्रेटों को न्यायिक रूप से कार्य करना होता है। इसके अलावा प्रावधान के तहत अनुमत प्रतिबंध अस्थायी प्रकृति के हैं और इन्हें केवल विशेष आपातकालीन स्थिति में ही लगाया जा सकता है।

फिर भी, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार ये प्रावधान नागरिकों के कुछ मौलिक अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाते हैं।

सबसे पहले, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) व (3) द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर प्रतिबंध "सार्वजनिक व्यवस्था" के हित में लगाया जा सकता है न कि "आम जनता" के हित में, उनके अनुसार यह अभिव्यक्ति, सार्वजनिक व्यवस्था की तुलना में अपने दायरे में व्यापक है और चूंकि धारा 144 एक मजिस्ट्रेट को आम जनता के हित में आदेश पारित करने में सक्षम बनाता है, अतः ऐसे प्रतिबंध अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) व (3) द्वारा अनुमत प्रतिबंध से परे है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 144 में कहीं भी "आम जनता" अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है। कुछ उद्देश्य जिन्हें सुनिश्चित करने के लिए इसके तहत आदेश पारित किया जा सकता है, वे हैं, "बाधा, क्षोम, क्षति को रोकना..." आदि। इसमें कोई संदेह नहीं है, ऐसी गतिविधियों की रोकथाम "सार्वजनिक हित" में होगी "लेकिन यह "सार्वजनिक व्यवस्था" बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है।

दूसरा, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, धारा 144 कई चीज़ों का मिश्रण है जिनमें से कई का अनुच्छेद 19 (2) के प्रावधान में भी कोई संदर्भ नहीं है। उनका यह तर्क है कि राज्य को 19 (2) एवं 19 (3) के प्रावधानों का लाभ उठाने के लिए एक विशेष कानून पारित करना होगा एवं धारा 144 जैसे प्रावधान द्वारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इस विवाद को केवल खारिज किए जाने के योग्य समझा जाता है। करने का उल्लेख किया जाना है। कला के खंड (2) से (6)। 19 में उल्लिखित प्रतिबंधों को लागू करने के उद्देश्य से केवल कानून बनाने की आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 19 (2) से 19 (6) के तहत ऐसा कोई कानून बनाने की आवश्यकता नहीं है, जिसका उद्देश्य केवल मात्र उल्लिखित प्रतिबंधों को लागू किया जाना हो।

तीसरा, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार धारा 144 की उपधारा (1) में मजिस्ट्रेट को उन परिस्थितियों की जांच करने की आवश्यकता नहीं है जिनके तहत आदेश देना आवश्यक होता है। यह सत्य है कि धारा 144 में कहीं भी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है जिसके तहत मजिस्ट्रेट के आदेश से पहले जांच की जानी आवश्यक हो। लेकिन हमें इस धारा को संपूर्ण रूप से समझना चाहिए। धारा 144 की उपधारा (1) का उत्तरार्द्ध भाग, यह विशेष रुप से उल्लेखित करता है कि मजिस्ट्रेट के आदेश में मामले के भौतिक तथ्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट के लिए तथ्यों को

निर्धारित करना तब तक संभव नहीं होगा जब तक कि वह जांच न कर ले या जब तक वह व्यक्तिगत ज्ञान से तथ्यों के बारे में संतुष्ट न हो या जब तक वह उसे की गई रिपोर्ट पर जिसे वह प्रथमदृष्टया सही मानता हो, से संतुष्ट न हो। इसलिए, स्पष्ट रूप से, यह धारा आदेश देने के मामले में मजिस्ट्रेट को मनमानी शक्ति प्रदान नहीं करती है।

यह तर्क दिया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 कुछ मजिस्ट्रेटों को बहुत व्यापक शक्तियाँ प्रदान करती है और उन शक्तियों का प्रयोग करते हुए मजिस्ट्रेट, नागरिकों के भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा शांतिपूर्वक एवं हथियारों के बिना इकट्ठा होने के अधिकारों पर बहुत गंभीर प्रतिबंध लगा सकते हैं।

हालाँकि, हमें ऐसा लगता है कि यह शक्ति भले ही व्यापक दिखाई देती है, परंतु इसका प्रयोग केवल आपात्कालीन स्थिति और रुकावट को रोकने, कानूनी रूप से नियोजित किसी भी व्यक्ति को चोट या परेशानी या मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा को खतरे, या सार्वजनिक शांति में बाधा या देने या "कोई झगड़े" को रोकने के उद्देश्य से ही किया जा सकता है। ये कारक शक्ति के प्रयोग को निर्धारित करते हैं और परिणामस्वरूप उस शक्ति को असीमित या अनियंत्रित मानना गलत होगा। इसके अलावा, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि किसी को भी, किसी अन्य व्यक्ति को "रुकावट, परेशानी या चोट आदि" पैदा करने का अधिकार नहीं है। चूँकि

यह निर्णय एक मजिस्ट्रेट का होना चाहिए कि क्या किसी मामले की विशेष परिस्थितियों में, इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए कोई आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं, हम यह मानने के हकदार हैं कि इन शक्तियों का प्रयोग वैध और ईमानदारी से किया जाएगा। इस धारा को मात्र इस आधार पर खत्म नहीं किया जा सकता कि मजिस्ट्रेट संभवतः अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर सकता है।

यह भी सत्य है कि शुरू में संबंधित मजिस्ट्रेट को ही आदेश देने की आवश्यकता के बारे में राय बनानी होती है। इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या इतनी व्यापक शक्ति प्रदान करना संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) व 19 (ए) (बी) के प्रावधानों के तहत प्रत्याभूत अधिकारों का उल्लंघन है। संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) में वर्णित अधिकार पूर्ण अधिकार नहीं है, परंतु उपबंध (2) के तहत उनमें निर्दिष्ट सीमओं के अधीन है, जिसका उल्लेख निम्नलिखित है:

"खंड (1) के उप-खंड (ए) में कुछ भी मौजूदा कानून के संचालन को प्रभावित नहीं करेगा, या रोक नहीं पाएगा। राज्य को कोई भी कानून बनाने से बचना चाहिए, जहां तक ऐसा कानून राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के हित में या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या भड़काने के संबंध में। किसी अपराध का उल्लेख करना।"

इसी प्रकार जो अधिकार उप-वाक्य (बी) संबंधित परिसीमओं में पाई जाने वाली सीमाओं के अधीन हैं। अनुच्छेद 19 (3) जो इस प्रकार चलता है:

"उक्त खंड के उप-खंड (बी) में कुछ भी मौजूदा कानून के संचालन को प्रभावित नहीं करेगा, जहां तक यह राज्य को सार्वजनिक व्यवस्था के हित में, उचित प्रतिबंध लगाने से रोकता है, या राज्य को कोई कानून बनाने से रोकता है। उक्त उपखंड द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोग।"

दंड प्रक्रिया संहिता संविधान के प्रारंभ में एक मौजूदा कानून था और इसलिए, जिन आधारों पर इसकी वैधता को हमारे सामने चुनौती दी गई है, उनके संदर्भ में, हमें यह सुनिश्चित करना है कि क्या इसके तहत एक मजिस्ट्रेट को शक्ति प्रदान की गई है। किन उपवर्गों के अधिकारों पर प्रतिबंध लगाएं। उपवाक्य (ए) और (बी) अनुच्छेद से 19 संबंधित उचित है। यह ध्यान में रखना होगा कि धारा 144 के प्रावधान केवल आपातकालीन स्थिति में ही आकर्षित होते हैं। इसके तहत, आपातकाल का प्रारंभिक न्यायाधीश, निस्संदेह, जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त कोई अन्य मजिस्ट्रेट है। लेकिन फिर, कानून और व्यवस्था बनाए रखना राज्य के कार्यकारी विभाग का कर्तव्य और कार्य है, इसलिए यह अपरिहार्य है कि इस बारे में राय बनाने का सवाल कि क्या कोई आपात्कालीन स्थिति है या

नहीं, सबसे पहले, आराम करना ही चाहिए। उन व्यक्तियों के साथ जिनके माध्यम से कार्यपालिका अपने कार्य करती है और अपने कर्तव्यों का निर्वहन करती है। प्रत्येक मामले में राज्य सरकार से स्वयं उन कर्तव्यों और कार्यों का पालन करने की अपेक्षा करना अव्यावहारिक और असंभव भी होगा। इसलिए धारा के प्रावधान जो इस संबंध में शक्ति उसमें निर्दिष्ट किसी भी वर्ग से संबंधित मजिस्ट्रेट को सौंपते हैं, उन्हें अनुचित नहीं माना जा सकता है। हम यह भी इंगित कर सकता है कि मजिस्ट्रेट की संतुष्टि। धारा के तहत एक आदेश प्रख्यापित करने की आवश्यकता के बारे में सोचें। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 को धारा द्वारा पूरी तरह से व्यक्तिपरक नहीं बनाया गया है। हम भी उल्लेख कर सकते हैं कि हालांकि एक उपयुक्त मामले में एक मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत एकतरफा आदेश देने का अधिकार है, कानून के अनुसार उसे आदेश पारित करने से पहले, जहां संभव हो, उस व्यक्ति या व्यक्तियों को नोटिस देना चाहिए जिनके खिलाफ आदेश दिया गया है। फिर उप-धारा (4) प्रावधान करता है कि कोई भी मजिस्ट्रेट या तो अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या किसी पीड़ित व्यक्ति के आवेदन पर इस धारा के तहत दिए गए किसी भी आदेश को रद्द कर सकता है या बदल सकता है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जहां एक पक्षीय आदेश दिया गया है, वहां भी प्रभावित व्यक्ति या व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देने का अधिकार है। उप-धारा (5) प्रावधान

करता है कि जहां ऐसी चुनौती दी जाती है, मजिस्ट्रेट संबंधित व्यक्ति को उसके सामने पेश होने और आदेश के खिलाफ कारण बताने का शीघ्र अवसर देगा। ऐसी कार्यवाही में मजिस्ट्रेट का निर्णय निस्संदेह न्यायिक होगा क्योंकि यह आदेश से प्रभावित पक्ष को सुनने के बाद लिया गया होगा। चूँकि मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही न्यायिक होगी, इसलिए उसे आदेश को रद्द करना होगा जब तक कि वह इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच जाता कि जिन आधारों पर यह आधारित है, वे कानून में इसकी गारंटी देने के लिए पर्याप्त हैं। इसके अलावा, चूंकि आदेश के औचित्य को चुनौती देने के लिए खुला है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि शक्ति के व्यापक आयाम के कारण धारा 144 कुछ मजिस्ट्रेटों पर प्रतिबंध लगाता है, यह कुछ मौलिक अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है।

हालाँकि, विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पीड़ित व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देने का जो अधिकार दिया गया है, वह भ्रामक है क्योंकि वह अपने फैसले के संबंध में न्यायाधीश होगा। यह तर्क सिविल कार्यवाही में किए गए समीक्षा के लिए आवेदन पर भी समान रूप से लागू होगा और हमें नहीं लगता कि यह बिल्कुल भी अच्छा है। फिर भी, हालांकि संहिता में धारा 144 के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ कोई अपील प्रदान नहीं की गई है। उच्च न्यायालय के पास धारा 435 के साथ धारा 439 के तहत शक्ति है। ऐसे आदेश के पुनरीक्षण के

आवेदन पर विचार करने की उच्च न्यायालय की शक्तियाँ। एक पुनरीक्षण आवेदन से निपटना इतना व्यापक है कि यह उस आदेश को रद्द करने में सक्षम है जिसे उन सामग्रियों द्वारा समर्थित नहीं किया जा सकता है जिन पर इसे आधारित माना जाता है। हम उस उप-धारा को इंगित कर सकते हैं। धारा 144 (1) में एक मजिस्ट्रेट की आवश्यकता होती है जो इसके तहत आदेश देता है कि वह उसमें उन भौतिक तथ्यों को बताए जिन पर वह आधारित है और इस प्रकार उच्च न्यायालय के पास प्रासंगिक सामग्री होगी और वह स्वयं इस पर विचार करने की स्थिति में होगा कि क्या वह सामग्री पर्याप्त है या नहीं। ऐसे मामले के उदाहरण के रूप में जहां उच्च न्यायालय ने इस तरह के आदेश में हस्तक्षेप किया था, हम पी. टी. चंद्रा, संपादक, ट्रिब्यून बनाम एम्परर[1] के फैसले का उल्लेख कर सकते हैं। वहां, विद्वान न्यायाधीशों ने बिल्कुल सही ढंग से बताया कि आदेश के औचित्य के साथ-साथ इसकी वैधता पर उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में विचार किया जा सकता है, हालांकि आदेश की औचित्य की जांच में उच्च न्यायालय जिला मजिस्ट्रेट की राय को उचित महत्व देगा। जो मौके पर मौजूद व्यक्ति होता है और जिले में सार्वजनिक शांति बनाए रखने के लिए जिम्मेदार होता है। उस मामले में विद्वान न्यायाधीशों ने जिला मजिस्ट्रेट के एक आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि निषिद्ध कार्य और उस खतरे के बीच कोई संबंध नहीं था जिसे रोकने के लिए आदेश पारित किया

गया था। हम यह भी बताना चाहेंगे कि धारा 144 के तहत किसी आदेश का उल्लंघन करने पर जुर्माना लगाया जा सकता है। जो धारा 188, भारतीय दंड संहिता में प्रदान किया गया है। इसलिए, जब इसके तहत कोई अभियोजन शुरू किया जाता है, तो धारा 144 के तहत आदेश की वैधता समाप्त हो जाती है। धारा 144, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, को चुनौती दी जा सकती है। इसलिए, हम श्री मणि के इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि न्यायिक समीक्षा का उपाय भ्रामक है।

तर्क यह है कि अपराधिता के निर्धारण का परीक्षण। अग्रिम रूप से वास्तविकता अनुचित है, जाहिरा तौर पर शेनेक के मामले ([2]) में बताए गए सिद्धांत पर आधारित है कि मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर पिछले प्रतिबंध केवल तभी स्वीकार्य हैं जब कोई स्पष्ट और वर्तमान खतरा हो। हालाँकि, हमें ऐसा लगता है कि अमेरिकी सिद्धांत को हमारे संविधान के तहत आयात नहीं किया जा सकता क्योंकि मौलिक अधिकार संविधान के 19(1) के तहत गारंटी देते हैं जो पूर्ण अधिकार नहीं हैं। लेकिन जैसा कि मद्रास राज्य बनाम वी.जी.राव ([3]) में बताया गया है। पंक्ति अनुच्छेद 19 के बाद के खंडों में लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन हैं। अमेरिकी संविधान में हमारे संविधान के अनुच्छेद (2) से (6) के अनुरुप नहीं है। अमेरिकी संविधान का चौदहवाँ संशोधन, अन्य बातों के अलावा, प्रावधान करता है कि, "कोई भी राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा या लागू नहीं करेगा

जो संयुक्त राज्य के नागरिकों के विशेषाधिकारों या उन्मुक्तियों को कम करेगा; "और न ही कोई राज्य किसी भी व्यक्ति को कानूनी प्रक्रिया के बिना, जीवन, स्वतंत्रता, या संपत्ति से वंचित करेगा;....."

हमारे संविधान की रूपरेखा संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से भिन्न है। फिर, पुनः संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि संविधान द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ पुलिस शक्ति के सिद्धांत का सहारा लेकर सामाजिक नियंत्रण के अधीन हैं। इस पृष्ठभूमि के आलोक में शेनेक के मामले ([2]) में निर्धारित परीक्षण को समझना होगा।

धारा 144 की भाष कुछ अलग है। धारा में निर्धारित परीक्षण केवल "संभावना" या "प्रवृत्ति" नहीं है। धारा कहती है कि मजिस्ट्रेट को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि सार्वजनिक सुरक्षा आदि के लिए खतरे का प्रतिकार करने के लिए विशेष कृत्यों की तत्काल रोकथाम आवश्यक है। धारा द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग न केवल वहां किया जा सकता है, जहां वर्तमान खतरा मौजूद है, बल्कि इसका प्रयोग तब भी किया जा सकता है, जब कोई खतरे की आशंका हो।

इसके अलावा यह ध्यान देने योग्य है कि शेनेक के मामले([2]) में सुप्रीम कोर्ट अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार से चिंतित था और उसने कहा: "यह अच्छी तरह से हो सकता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को

कम करने वाले कानून का निषेध पिछले प्रतिबंधों तक ही सीमित नहीं है, हालांकि उन्हें रोकना मुख्य उद्देश्य हो सकता है... हम मानते हैं कि कई स्थानों पर और सामान्य समय में, प्रतिवादियों ने परिपत्र में जो कुछ भी कहा था, वह उनके संवैधानिक अधिकारों के अंतर्गत होता। लेकिन किसी भी कार्य का चरित्र उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिनमें यह किया गया है... स्वतंत्र भाषण की सबसे कड़ी सुरक्षा किसी व्यक्ति को थिएटर में गलत तरीके से आग लगाने और घबड़ाहट का कारण बनने से नहीं बचाएगी। यह किसी व्यक्ति को उन शब्दों के उच्चारण के विरुद्ध निषेधाज्ञा से भी नहीं बचाता है जिनमें बल का प्रभाव हो सकता है... हर मामले में प्रश्न यह है कि क्या इस्तेमाल किए गए शब्दों का इस्तेमाल ऐसी परिस्थितियों में किया जाता है एवं वे इस तरह की प्रकृति के हैं जो एक स्पष्ट और वर्तमान खतरा पैदा करें, कि वे उन महत्वपूर्ण बुराइयों को जन्म देंगे जिन्हें रोकने का कांग्रेस का अधिकार है। यह सामीप्य व और डिग्री का प्रश्न है।"

संयुक्त राज्य अमेरिका में जो भी स्थिति हो, हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि धारा 144 के तहत अनुमेय प्रकार की अग्रिम कार्रवाई अनुच्छेद 19 (2) एवं 19 (3) के तहत अस्वीकार्य नहीं है। उपबंधों 19 (2) (1951 में संशोधित) व 19 (3) के तहत सार्वजनिक व्यवस्था व अन्य बातों के हित में, इन खंडों द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर उचित प्रतिबंध

लगाने के लिए कानून बनाने की शक्ति विधायिका को दी गई है। इसे सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक व्यवस्था को पहले से बनाए रखना होगा और इसलिए, विधायिका हर वह कानून पारित करने के लिए सक्षम है जो एक उपयुक्त प्राधिकारी को सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से अग्रिम कार्रवाई करने या आपात स्थिति में विशेष प्रकार के कृत्यों पर अग्रिम प्रतिबंध लगाने की अनुमति देती है। इसलिए, हमें इस विवाद को खारिज करना चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि कानून और व्यवस्था बनाए रखने का कर्तव्य मजिस्ट्रेट पर डाला गया है, इसलिए उसे उस कर्तव्य को निभाना चाहिए और नागरिक की सामान्य गतिविधियों को प्रतिबंधित या प्रतिबंधित करके इससे बचना नहीं चाहिए। लेकिन यह कहना भी गलत नहीं है कि किसी आपातकालीन स्थिति में, जहां सार्वजनिक व्यवस्था के लिए खतरे की वास्तविक आशंका हो, ऐसे प्राधिकारी द्वारा की गई अग्रिम कार्रवाई व्यवस्था बनाए रखने के कर्तव्य के निर्वहन में की गई कार्रवाई के अलावा कुछ और है। ऐसी परिस्थितियों में कर्तव्य निर्वहन का यही एकमात्र तरीका हो सकता है। इसलिए, हम इस तर्क को अस्वीकार करते हैं कि धारा 144 व्यवस्था बनाए रखने के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों के कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु वैध गतिविधि या अधिकार का दमन प्रतिस्थापित करता है।

आदेश के परीलिक्षण के पश्चात्, हमें श्री मणि की कुछ आपत्तियों पर

विचार करना चाहिए, जिनके अनुसार, आदेश में तीन विशेषताएं हैं जो इसे असंवैधानिक बनाती हैं। सबसे पहले, उनके अनुसार आदेश पूरी जनता के विरुद्ध निर्देशित है, हालांकि मजिस्ट्रेट ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि इसे प्रख्यापित इसलिए किया गया था, क्योंकि एक औद्योगिक विवाद ने गंभीर मोड़ ले लिया था। श्री मणि का यह तर्क है कि आम जनता की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाना अनुचित है, जबकि ऐसा कहीं प्रतीत नहीं हुआ कि जनता के सदस्यों की सार्वजनिक व्यवस्था के विरुद्ध हानिकारक गतिविधियों में शामिल होने की संभावना है। यह सच है कि ऐसा भी प्रतीत नहीं होता है कि आम जनता औद्योगिक विवाद में शामिल थी। यह भी सत्य है कि आदेश के क्रियान्वयन से जनता के सदस्यों की गतिविधियों को विशेष क्षेत्रों में प्रतिबंधित कर दिया जाएगा। परंतु हमें ऐसा लगता है कि जो लोग कानून और व्यवस्था के प्रभारी हैं, उनके लिए जनता के सदस्यों और दोनों कपड़ा संघों के सदस्यों के बीच अंतर करना अत्यंत मुश्किल होगा और इसलिए, विशेष गतिविधियों को संदर्भित करने का यही एकमात्र व्यावहारिक तरीका है, कि उन समस्त प्रतिबंधों को समस्त जनता पर लागू किया जाए।

नागरिकों का जुलूस निकालने या सार्वजनिक बैठकें आयोजित करने का अधिकार अनुच्छेद 19(1)(बी) में वर्णित शांतिपूर्वक और बिना हथियार के इकट्ठा होने और भारत के क्षेत्र में कहीं भी आने-जाने के अधिकार से

आता है। इसलिए, यदि दोनों कपड़ा संघों से असंबद्ध जनता का कोई भी सदस्य इन अधिकारों का प्रयोग करना चाहता है, तो वह जिला मजिस्ट्रेट के पास जाने और आदेश द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से छूट प्रदान करके आदेश में संशोधन के लिए आवेदन करने हेतु स्वतंत्र है।

श्री मणि का अन्य तर्क एवं मजिस्ट्रेट के आदेश की आलोचना का उनका दूसरा आधार, यह है कि आदेश में एकमात्र अपवाद अंतिम संस्कार जुलूस और धार्मिक जुलूस के संबंध में है और इसलिए, जिस क्षेत्र में आदेश लागू होता है उस क्षेत्र में किसी अन्य उद्देश्य के लिए जुलूस निकालने या एकत्र होने के लिए जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति लिया जाना संभव नहीं होगा। जहां तक पारंपरिक धार्मिक या अंतिम संस्कार जुलूसों का सवाल है, आदेश में स्वयं ही यह छूट दी गई है कि यदि कोई किसी अन्य उद्देश्य के लिए जुलूस निकालना चाहता है, जो वैध है तो धारा 144, उपधारा (4), आदेश में परिवर्तन के लिए आवेदन करना और विशेष छूट प्राप्त करने हेतु स्वतंत्र है। आदेश के छूट खंड को और अधिक व्यापक बनाने में जिला मजिस्ट्रेट की चूक मात्र, हमारी राय में, इस आधार पर आदेश को रद्द नहीं करेगी कि यह नागरिकों के कुछ मौलिक अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है।

तीसरा और आखिरी आधार जिस पर श्री मणि ने आदेश की संवैधानिकता को चुनौती दी, वह यह था कि आदेश सार्वजनिक स्थानों

आदि पर उत्तेजक नारे लगाने पर रोक तो लगाता है, परंतु यह इस बात की कोई परिभाषा नहीं देता है कि "उत्तेजक नारों" से क्या तात्पर्य है। इसलिए, श्री मणि के अनुसार, यह आदेश अस्पष्ट है और इसे नागरिकों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाने वाला माना जाना चाहिए। हमें ऐसा लगता है कि अभिव्यक्ति "उत्तेजक नारे" को आवश्यक रूप से उस संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें इसका उपयोग क्रम में किया गया है और इसलिए, इसे अस्पष्ट नहीं माना जा सकता है।

इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जिला मजिस्ट्रेट का आदेश भी इस आधार पर असंवैधानिक नहीं है कि धारा 144 स्वयं अनुच्छेद 19 में मान्यता प्राप्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है या यह अस्पष्ट है और उन मौलिक अधिकारों पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है। इसलिए हम इस याचिका को खारिज करते हैं।

इस न्यायालय में यह याचिका दायर करने के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता ने एक विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत की जिसके द्वारा वह नागपुर उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांकित 09 अप्रेल, 1956 को चुनौती देना चाहता है। उनकी रिट याचिका खारिज कर दी गई थी। विशेष अनुमति याचिका में उठाए गए बिंदु इस याचिका में उठाए गए बिंदुओं के समान हैं। चूंकि हम इस याचिका को खारिज कर रहे हैं, इसलिए याचिकाकर्ता को नागपुर उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की विशेष

अनुमति देने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

याचिका खारिज.